नैतिकता के सन्दर्भ में कर्मसिद्धान्त की उपयोगिता

• आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि

भौतिक विज्ञान के समान कर्म-विज्ञान भी कार्यकारण सिद्धान्त पर निर्भर

जिस प्रकार भौतिक विज्ञान कार्यकारण के सिद्धान्त में आस्था प्रगट करके ही आगे बढ़ता है और नये-नये आविष्कार करता है, उसी प्रकार कर्म-विज्ञान भी कार्य-कारणसिद्धान्त के आधार पर वर्तमान जीवन की घटनाओं की व्याख्या करता है। कार्यकारण भाव के परिप्रेक्ष्य में प्रोफेसर हिरियन्ना कर्मसिद्धान्त के विषय में लिखते हैं-"कर्मसिद्धान्त का आशय यही है कि भौतिक जगत् की भांति नैतिक जगत् में भी पर्याप्त कारण के बिना कोई भी कार्य (कर्म) घटित नहीं हो सकता। यह समस्त दुःख का मूल स्रोत हमारे (नैतिकताविहीन) व्यक्तित्व में ही खोज कर ईश्वर और पड़ौसी के प्रति कटुता का निवारण करता है।"

भूतकालीन आचरण वर्तमान चरित्र में तथा वर्तमान चरित्र भावी चरित्र में प्रतिबिम्बित

इसका तात्पर्य यह है कि कर्मसिद्धान्त बताता है-भूतकाल के नैतिक या अनैतिक आचरणों के अनुसार ही वर्तमान चरित्र व सुख-दुख का निर्माण होता है, साथ ही वर्तमान नैतिक-अनैतिक आचरणों के आधार पर प्राणी के भावी चरित्र तथा सुख-दुःखमय जीवन का निर्माण होता है। अतीतकालीन जीवन ही वर्तमान व्यक्तित्व का निर्माता है और वर्तमान जीवन (आचरण) ही भविष्यकालीन व्यक्तित्व का विधाता है। इसका आशय यह है कि कोई भी वर्तमान शुभ या अशुभ आचरण परवर्ती शुभ या अशुभ घटना का कारण बनता है, उसी प्रकार पूर्ववर्ती किसी शुभ-अशुभ आचरण के कारण वर्तमान शुभ या अशुभ घटना घटित होती है।

अतीतकालीन शुभाशुभ आचरण के अनुसार भावी परिणाम: शास्त्रीय दृष्टि में

आचारांग सूत्र में जिस प्रकार कर्मसिद्धान्त के सन्दर्भ में वर्तमान के शुभ-अशुभ आचरण के भावी परिणामों का दिग्दर्शन कराया गया है, उसी प्रकार भूतकालीन शुभ-अशुभ आचरण के अनुसार वर्तमान शुभाशुभ परिणामों का निर्देश करते हुए कहा गया है कि अतीत या भविष्य कर्मों के अनुसार होता है, यह सोच (देख) कर पवित्र नैतिक आचरणयुक्त महर्षि कर्मों को धुनकर क्षय कर डाले। जैसे कि आचारांग सूत्र में पृथ्वी कायिक आदि जीवों की अमर्यादित हिंसा (समारम्भ) के परिणामों का निर्देश किया गया है कि "ऐसा करना उसके अहित के लिए है, अबोधि का कारण है," "यह निश्चय ही ग्रन्थ (कर्मों की गांठ) है, यह मोह है, यह अवश्य ही मृत्यु रूप है, यही नरक का निर्माण है।" संग्रहवृत्ति के अनैतिक पूर्वकृत कर्म और उसके परिणाम का उल्लेख करते हुए कहा गया है-"इस संसार में कई संग्रहवृत्ति मानव बचे हुए या अन्य द्रव्यों का अनापसनाप संग्रह करते हैं तथा कई असंयमी पुरुषों के उपभोग के लिए संचय करते हैं, परन्तु वे उपभोग काल के समय यदाकदा रोगों से ग्रस्त हो पड़ते हैं।" जाति कुल गोत्र आदि के मद (अभिमान) के भावी परिणामों का निर्देश करते हुए कहा गया है-"अंधा होना, बहरा होना, गूंगा होना, काना होना, टूंटा होना, कुबड़ा होना, बौना होना, कालाकलूटा होना और कोढ़ी होना, ये सब जाति आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के मद (अभिमान) के कारण होता है। जातिं आदि के मद से प्राणी इस प्रकार की अंगविकलता को प्राप्त होता है, यह न समझने वाला (मदग्रस्त) व्यक्ति हतोपहत होकर जन्म-मरण के चक्र में आवर्तन-भ्रमण करता है।"

काम भोगों में ग्रस्त मानव की दुर्दशा का वर्णन करते हुए कहा गया है-"यह कामकामी (कामभोगों की कामना करने वाला) पुरुष निश्चय ही शोक (चिन्ता) करता है, विलाप करता है, मर्यादा भ्रष्ट हो जाता है, तथा दुःखों और व्यथाओं से पीड़ित और संतप्त हो जाता है।" "अज्ञानी (बाल) मूढ, मोहग्रस्त और कामसवत्त व्यक्ति का दुःख शान्त नहीं होता। "वह दुःखी व्यक्ति दुःखों के ही आवर्त्त (चक्र) में अनुपरिवर्तित होता (बारबार जन्म-मरण करता) रहता है।" फिर उसे किसी समय एक ही साथ उत्पन्न [१] अनेक रोगों का प्रादुर्भाव होता है।

पूर्वकालिक नैतिक आचरण करने वालों का वर्तमानः व्यक्तित्व शास्त्रीय दृष्टि में

पूर्वकालीन नैतिक आचरण करने वाले व्यक्तियों के वर्तमान व्यक्तित्व के सम्बन्ध में आचारांग सूत्र कहता है-"जो पुरुष पारगामी अनैतिक आचरणों से तथा विषयभोगों से विरक्त हैं, वे लोभसंज्ञा को पार कर चुके, वे (वर्तमान में) विमुक्त (अकर्म) हैं। वे लोभ के प्रति अलोभवृत्ति से घृणा (विरक्ति) करते हुए प्राप्त कामभोगों का सेवन (अभिग्रहण) नहीं करते।" "अरति-संयम के प्रति अरुचि भाव को दूर करने वाला वह मेधावी क्षणमात्र में मुक्त हो जाता है।" "जो आयतचक्षु (दीर्घदर्शी) और लोग-दृष्टा है, लोक की विभिन्नता को देखने वाला है, वह लोक के ऊत्धोभाग, ऊर्ध्वभाग और तिर्यग्भाग को और उनके स्वरूप एवं कारण को जानता है।" [२] इस मनुष्य जन्म में संधि (उद्धार का अवसर) जान कर जो कर्मों से बड़ आत्म-प्रदेशों को मुक्त करता है, वही वीर है और प्रशंसा का पात्र हैं।" [३] यह शरीर जैसा अंदर से असार है, वैसा ही बाहर से असार है। और जैसा बाहर से असार है, वैसा ही अंदर से असार है। पंडित (ज्ञानी) पुरुष और देह के अंदर की अशुचि तथा बाहर स्राव करते देह के विभिन्न मलद्वारों को देखे और यह रुख देख कर वह शरीर के वास्तविक स्वरूप का पर्यवेक्षण करें।" [४] इसी प्रकार "उत्तराध्ययन सूत्र" में चित्तमुनि का जीव सम्भूति के जीव-ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को वर्तमान के नैतिक आचरण और उसके भावी सुफल की प्रेरणा देते हुए कहता है-"यदि तुम भोगों को छोड़ने में असमर्थ हो तो हे राजन! कम से कम आर्य कर्म (नैतिक आचरण) तो करो। नीति धर्म में स्थित रहकर यदि तुम अपनी प्रजा के प्रति अनुकम्पाशील बनोगे तो भी

---

१. (क) "कामकामी खलु अयं पुरिसे। सेसोथति जूरति तिप्पति पिड्डति (पिट्डति) परितछति।"

(ख) "बाले पुण णिहे काम-समणुण्णे असमियदुक्खे दुक्खी दुक्खाजमेव आवट्टं अणुपरियट्टइ।"- आचा १-२-३

(ग) तओ से एगया रोग समुप्पाया समुप्पंज्जंति।"- आचारांग प्र-१, अ-२, उ-६, ३, ४

२. विमुक्का हु ते जणा, जे जण्णा पारगामिणो। लोभ अलोभेण दुगुंछमाणे, लध्द्धे कामे नग्मिगाहइ। विणइत्तुं लोभं निवखम्म एवम् अकम्मे जाणति पासति।"-आचारांग श्रु-१, अ-२, उ-२

"अरइं आउट्टे से मेहावी रवणंसि मुक्के।"- वही, १/२/२

आययचक्खू लोगविपस्सी, लोगस्स अहोभागं जाजइ उड्ढंभागंजाणइ तिरियं भागं जाणइ।

३. संधि विदिला इह मक्किएहिं, एसवीरे पुसेसिए जो बद्धे पडियोयए। वही १।२।५

४. जहा अंतो वहाबाहिं जहाँबाहिं तहाअंतो। पंडिए पडिलेहाए। - आर्चारोग १।२।५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहां से मरकर वैक्रियशक्ति धारक देव तो हो जाओगे।"[५] "वर्तमान के अनैतिक आचरणों (कर्मों) का भावी दुष्परिणाम बनाते हुए कहा गया है-"जो अज्ञानी मानव हिंसक है, मृणावादी है, लुटेरा है, दूसरों का धन हड़पने वाला है, चोर है, कपटी (ठग) है, अपहरणकर्ता एवं शठ (धूर्त) है। तथा स्त्री एवं इन्द्रिय-विषयों में गृद्ध है, महारम्भी-महापरिग्रही है, मांस-मदिरा का सेवन करने वाला है, दूसरों पर अत्याचार एवं दमन करता है, ऐसा तुन्दिल व मुस्टंडा है, वह नरकाम का आकांक्षी है।[६] इसी प्रकार मृगों के शिकार जैसे अनैतिक कर्म को करते हुए संयत राजा को महामुनिगर्दमालि ने अहिंसा और अभयदान का उपदेश देकर उससे हिंसादि पापास्रव (पापकर्म) छुड़ाए और उसे सर्वजीवों का अभयदाता महाव्रती उच्चराजर्षि बना दिया।

कर्म सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में अनैतिक आचरणकर्ता को नैतिक बनने का उपदेश

इस प्रकार हम देखते हैं कि तीर्थंकरों, ज्ञानी महर्षियों तथा जैन श्रमणों द्वारा जिस किसी अनैतिक आचरण परायण व्यक्ति को सदुपदेश दिया गया है, और नीतिधर्म के सन्मार्ग पर लगाया गया है, उसे कर्मसिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में ही शुभ-अशुभ कर्म, उसके उपार्जन करने के कारण और उसके शुभ-अशुभ परिणामों (फलों) का दिग्दर्शन कराया गया है।[७]

नैतिक अनैतिक कर्मों के कर्ता को कर्म ही फल देते हैं, ईश्वरादि नहीं

वैदिक, ईसाई, इस्लाम आदि धर्मों की तरह ईश्वर या किसी शक्ति विशेष का भय या उसके द्वारा समस्त प्राणियों को कर्मफल-प्रदान करने की बात नहीं बताई गई है। जैन कर्मसिद्धान्त की सर्वश्रेष्ठ उपयोगिता इसी में है कि वह परोक्ष और अगम्म ईश्वर या किसी देवी-देव को प्राणियों के कर्मों का प्रेरक, कर्ता या फलदाता नहीं बताता। वह आत्मा को ही अपने नैतिक-अनैतिक कर्मों का कर्ता, और कर्मों को ही स्वयं फलदाता बता कर वैज्ञानिक दृष्टि से कार्यकारण की मीमांसा करता है। जैनदर्शन, या जैन शास्त्रों में कहीं भी यह कथन (प्ररूपण) नहीं मिलेगा कि किसी पुण्य या पाप से युक्त आचरण करने वाले को उसके उक्त कर्म का फल ईश्वर या और कोई शक्ति प्रदान करती हो।[८]

पूर्वोक्त शास्त्रीय उद्धरणों में सर्वत्र कर्मसिद्धान्त के अनुसार ही प्रतिपादन किया गया है, कि अनैतिक या पापयुक्त आचरण करने वाले को नरक या तिर्यञ्च गति अथवा इहलोक में रोग, शोक, दुःख, दुर्दशा आदि फल प्राप्त होते हैं, और जो नैतिक या धार्मिक आचरण करता है तथा पापाचरण या अनैतिक आचरण से दूर रहता है, उसे स्वर्ग या मनुष्य जन्म, उत्तम अवसर, शुभसंयोग, संयम प्राप्ति या मुक्ति आदि फल प्राप्त होते हैं। ईश्वर या देवी-देव आदि के समक्ष गिड़गिड़ाने, उनकी खुशामद करने, तथा कृत पापों या अनैतिक आचरणों के फल से छुटकारा पाने के लिए प्रार्थना करने वह या कोई शक्ति उसे अपने

---

५. उत्तराध्ययन आ. १३ गा. ३२. कित्तसम्मूतीय।

६. वही, अ-७ गा. ५,६,७

७. देखें, उत्तराध्ययन का अठार हवाँ संयतीय अध्ययन।
"अमओ पत्यिका तुज्झ अभयदाया भवाहिय।
अयिक्के जीब्लोगंमि कि हिंसाए पसज्ञसि।"
- उत्तरा.अ. १८।११

८. "अप्पा बत्ता विकत्रा म दुहाजयसुहाज य।"- उत्तराध्ययन २०/३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृतकर्मों के फल से मुक्त नहीं कर सकती। कर्म के मामले में ईश्वर या किसी शक्ति का हस्तक्षेप जैन कर्मसिद्धान्त स्वीकार नहीं करता।[९]

सप्तव्यसनरूप अनैतिक कर्मों का फल किसी माध्यम से नहीं, स्वतः मिलता है

जैनाचार्यों ने जैन कर्मसिद्धान्तानुसार नैतिक और अनैतिक आचरणों (कर्मों) का फल स्वतः तथा सीधे ही मिलने की बात कही है जैसे कि सप्त कुव्य सनरूप अनैतिक आचरण का सीधे (Direct) फल बताते हुए एक जैनाचार्य ने कहा है -"द्यूत, मांसाहार, मद्यपान, वेश्यागमन, शिकार, चोरी, परस्त्रीगमन, लोक में ये सात कुव्यसन हैं, अनैतिक (पापमय) आचरण हैं, जो व्यक्ति को घोरातिघोर नरक में डालते हैं।[१०] अथवा व्यक्ति इनसे घोरतम नरक में पड़ते हैं।" यहाँ किसी ईश्वर या किसी शक्ति को माध्यम (बिचौलिया) नहीं बताया गया है कि ईश्वर या अमुक शक्ति कुव्यसनी को घोर नरक में डालती है।

अतः नैतिकता के सन्दर्भ में जैनकर्म सिद्धान्त की उपयोगिता स्पष्ट सिद्ध है।

ईसाई धर्म मैं पाप कर्म से बचने की चिन्ता नहीं, क्यों और कैसे?

इसके विपरीत ईसाई धर्म के सिद्धान्तों पर दृष्टिपात करते हैं तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि वहाँ नैतिक अनैतिक आचरण (कर्म) का शुभ-अशुभ फल सीधा कर्म से नहीं मिलता, ईश्वर से मिलता है। जैसा कि डॉ. ए.बी. शिवाजी लिखते हैं -'मसी ही धर्म में कर्म, विश्वास और पश्चाताप पर अधिक बल दिया गया है। याकूब, जो प्रभु ईसामसीह का भाई था, अपनी पत्री में लिखता है -'सो तुमने देखलिया कि मनुष्य केवल विश्वास से ही नहीं, कर्मों से भी धर्मी ठहरता है। अर्थात्-कर्मों के साथ विश्वास भी आवश्यक है।"...'पौलूस' विश्वास पर बल देता है। उसका कथन है -"मनुष्य विश्वास से धर्मी ठहरता है, कर्मों से नहीं।" यह तथ्य स्पष्ट कर देता है कि मनुष्य के कर्म (शुभाशुभ या नैतिक अनैतिक आचरण) उसका उद्धार नहीं कर सकते। वह अपने कर्मों पर घमण्ड नहीं कर सकता।" पौलुस की विचारधारा में कर्म की अपेक्षा विश्वास का ही अधिक महत्व है। "यदि इब्राहीम कर्मों से धर्मी ठहराया जाता तो उसे घमण्ड करने की जगह होती, परन्तु परमेश्वर के निकट नहीं।" पौलूस की लिखी हुई कई पत्रियों में इस बात के प्रमाण हैं।"जीवन में मोक्ष का आधार कर्म नहीं विश्वास है।" विश्वास से धर्मीजन जीवित रहेगा।"ईसामसीह के अन्य शिष्यों ने भी विश्वास पर बल दिया है। इसी विश्वास को लेकर 'यूहन्ना' ईसामसीह के शब्दों को लिखता है-"यदि तुम विश्वास न करोगे कि मैं वही हूँ तो अपने पापों में मरोगे।[११]

---

९. (क) 'आत्ता पराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम्।' - चाणक्यनीति

(ख) स्वयं कृंत कर्मयदान्मना पुरा फलंतजीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं स्वयं कृतं कर्म निरर्थकंतदा॥ - अमिहगति सामायिकपाठ ३०

१०. "धूतं च मांसं च सुरा च वेश्या-पापर्ध्द-चौर्य परदारसेवा।
एतानि सपृ व्यसनानि लोके घोरातिघोरे नरके पतन्ति॥"

११. (क) याकूब की पत्री २:२४ (ख) रोमियो ५:१ (ग) सेमियो ४:२
(घ) प्रेरितो के काम १६:३१ (ड) यूहन्ना ८:२४ (च) जिनवाणी सिद्धांत विशेषांक में प्रकाशित "मसीही धर्म में कर्म की मान्यता " लेख से. पृ २०५-२०६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके अतिरिक्त डॉ. ए.बी. शिवाजी लिखते हैं -"मसीही धर्म में कर्म के साथ ही अनुग्रह का बहुत अधिक महत्व है, क्योंकि उद्धार अनुग्रह के ही कारण है। यदि ईश्वर अनुग्रह न करे तो कर्म व्यर्थ है।" बाईबिल में लिखा है -"जो मुझ से 'हे प्रभु हे प्रभु' कहता है, उनमें से हर एक स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करेगा, क्योंकि विश्वास के द्वारा अनुग्रह ही से तुम्हारा उद्धार हुआ है और यह तुम्हारी ओर से नहीं, वरन् परमेश्वर का दान है, और न कर्मों के कारण, ऐसा न हो कि कोई घमण्ड करे।" "....तो उसने (अनुग्रह करके) हमारा उद्धार किया, और यह धर्म के कार्यों के कारण नहीं, जो हमने आप (स्वयं) किए, पर अपनी दया के अनुसार नये जन्म के स्नान, और पवित्र आत्मा (का अनुग्रह) हमें नया बनाने के द्वारा हुआ।" [१२]

उपर्युक्त मन्तव्य से यह स्पष्ट है कि ईश्वर कर्तृत्ववादी मसीही धर्म में नैतिक-अनैतिक कर्मों (आचरणों) का उतना महत्व नहीं, जितना ईसामसीह (प्रभु) पर विश्वास और उसका अनुग्रह प्राप्त करने का है। ईसामसीह का विश्वास और अनुग्रह प्राप्त करके जिन्दगी भर अशुभ (पाप) कर्म करने वाला डाकू भी पवित्र जीवन जीवी ईसामसीह के साथ स्वर्गलोक में स्थान पा सकता है, इसके विपरीत शुभकर्म करने वाला अय्यूब नामक धर्मी व्यक्ति परमेश्वर या ईसामसीह (प्रभु) का विश्वास और अनुग्रह न पा कर विपत्ति और दुःख उठाना है। [१३]

विश्वास और अनुग्रह पर जोर, अनैतिकता से बचने पर नहीं

यही कारण है कि हत्या, दंगा, अन्याय, अनीति, अत्याचार, व्यभिचार, ठगी, फूट, ईर्ष्या, युद्ध, कलह आदि अनैतिक एवं पाप कर्म करने वाला व्यक्ति यह समझ कर कि ईश्वर या ईसामसीह पर विश्वास और उनका अनुग्रह प्राप्त करने मात्र से पापकर्म का कोई भी कटुफल नहीं मिलेगा, धड़ल्ले से ये अनैतिक पाप कर्म करता रहता है।

ईसाई धर्म में पूर्वजन्म और पुनर्जन्म की मान्यता न होने से पापी मनुष्य यह भी समझता है कि पूर्वजन्म के कर्मों का कोई उत्तरदायित्व नहीं है, और न ही पूर्वजन्म के कर्मों को भोगना है, साथ ही इस जन्म में किये हुए पापकर्म का फल भी अगले जन्म (पुनर्जन्म) में नहीं मिलेगा। अतः जितना जो कुछ हिंसादि पापकर्म किया जा सके, करलो और आनन्द से जीओ।

यद्यपि बाइबिल के ओल्ड टेस्टामेंट और न्यु टेस्टामेंट में दस-दस आज्ञाएँ (कमाण्डमेंट्स) ईसामसीह की अंकित हैं, [१४] परन्तु उन्हें मानकर और बार-बार पढ़-सुन कर भी ईश्वरीय विश्वास और अनुग्रह प्राप्त कर लेने के चक्कर में लोग अनैतिक कर्म करने से नहीं चूकते।

---

१२. (क) जिनवाली कर्मसिद्धान्त में प्रकाशित मसीही धर्म में कर्म की मान्यता लेख से पृ. २०८

(ख) मत्ती ७:२१ (ग) तीतुस ३:५

१३. (क) जिनवाणी कर्मसिद्धान्त विशेषांक में प्रकाशित 'मसीही धर्म में कर्म की मान्यता' से पृ. २०७

(ख) लूका २३:३९-४३ (ग) देखे, अय्यूब १२२

१४. देखे बाईबिल के गिरिप्रवचन ओल्ड टेस्टामेंट तथा न्यूटेस्टामेंट।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परन्तु जैनकर्म विज्ञान प्रारम्भ से ही नैतिक-धार्मिक आचरण (शुभकर्म) पर जोर देता है। वह केवल ईश्वर (परमात्मा = अर्हन्त एवं सिद्ध) पर विश्वास करने मात्र से या उनके द्वारा बताए हुए नैतिकता और धार्मिकता के यम-नियमों को मानने-सुनने मात्र से अथवा उन पर लम्बी चौड़ी व्याख्या कर देने से किसी व्यक्ति का उसे पाकर्म से उद्धार नहीं मानता। जब तक पापकर्मी व्यक्ति अपने पापकर्मों की आलोचना निन्दना (पश्चाताप), गर्हणा और क्षमापन द्वारा शुद्धिकरण नहीं कर लेता, तब तक वह पापकर्मों से छुटकारा नहीं पा सकता। उसे इस जन्म में या फिर अगले जन्म या जन्मों में अपने अनैतिक कुकर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। इसी प्रकार सत्कर्म करने वाले या कर्मक्षम रूप धर्मीकरण करने वाले व्यक्तियों पर तो परमात्मा का अनुग्रह स्वतः ही होता है। उसे परमात्मा का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए उनकी खुशामद करने की, या पूजा पत्री भेंट चढ़ावा आदि की रिश्वत नहीं देनी पड़ती। उसे अपने किये हुए सत्कर्मों या सद्धर्मों (शुद्ध कर्मों) का फल देर-सबेर से अवश्य मिलता है। नैतिकता के सन्दर्भ में जैनकर्म विज्ञान इसी तथ्य को व्यक्त करता है। यही कारण है कि जैनकर्म विज्ञान को मानने वाला व्यक्ति हिंसादि पापकर्म करते हुए हिचकिचाएगा।

नरकायु और तिर्यञ्चायुकर्म बन्ध के कारण

जैन कर्म विज्ञान की स्पष्ट उद्घोषणा है कि "महारम्भ (महाहिंसा), महापरिग्रह, पंचेन्द्रियवध, और मांसाहार नरकगमन (गति) के कारण है, माया (कपट), गूढ़ माया (दम्भ) झूठा तौल नाप करे, ठगी (वंचना) करे तो प्राणी तिर्यन्चगति प्राप्त करता है।" इसमें कोई भी ईश्वर , देवी-देव या शक्ति उसे अपने पापकर्मों (अनैतिक आचरण) के फल से नहीं बचा सकता। वह स्पष्ट कहता है कि कारण अनैतिकता का होगा, तो उसका कार्य नैतिकता के फल का कदापि नहीं होगा। [१५]

ईस्लाम धर्म में नैतिक आज्ञाएँ हैं, पर अमल नहीं

यद्यपि इस्लाम धर्म में भी अनैतिक कर्मों से बचने और नैतिक कर्म (आचरण) करने का 'कुरानशरीफ' आदि धर्मग्रन्थों में विधान है। वस्तुतः इस्लाम धर्म नैतिकता प्रधान है। उसके नैतिक विधानों का उल्लेख करते हुए 'डॉ. निजाम उद्दीन' लिखते हैं - जब हम सामाजिक कर्मों (मनुष्य अन्य मनुष्यों के साथ व्यवहारों) की ओर ध्यान देते हैं तो निम्न बातें सामने आती हैं -(१) अपने सम्बन्धियों, याचकों दीन-निर्धनों, अनाथों को अपना हक दो, (२) मितव्ययी बनो, फिजूल खर्च करने वाले शैतान के भाई हैं, (३) बलात्कार के पास भी न फटको, यह बहुत बुरा कर्म है।, (४) अनाथ की माल-सम्पत्ति पर बुरी नियतमत रखो। (५) व्रण या वचन की पाबन्दी करो, (६) पृथ्वी पर अकड़ कर मत चलो, (७) न तो अपना हाथ गर्दन से बांध कर चलो और न उसे बिलकुल खुला छोड़ो, कि भर्त्सना, निन्दा या विवशता के शिकार बनो (८) माता-पिता के साथ सदव्यवहार करो। यदि उनमें से कोई एक या दोनों वृद्ध हो कर रहें तो उन्हें उफ तक न कहो, न उन्हें झिड़क कर उत्तर दो, वरन् उनसे आदरपूर्वक बातें

---

१५. (क) चउहिं ठणेहिं जीवा णेरइयाउयत्ताए कम्मं पकरेति , त.. महांरमतभए, महापरिग्गहयाए, पंचिंदियवहण, कुणिमाहारेणं।

(ख) चउहिं ठाणेहिं जीवा तिरिक्खजोणिय (आउय) त्ताएकम्मं पगरेति, तं. जहा माइल्लताए णियडिल्लताए अलियंवयणेणं कुडतुल-कुडमाणेणं। - स्थानांग सूत्र. ४।४ सूत्र. ६२८-६२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करो।" (९) अपनी सन्तान की दरिद्रता के कारण हत्या न करो। उनकी हत्या बहुत बड़ा अपराध है।" (१०) किसी को नाहक कत्ल मत करो, (११) किसी ऐसी वस्तु का अनुकरण मत करो, जिसका तुम्हें ज्ञान न हो, (१२) मजदूर को उसका श्रम सूखने से पहले मजदूरी दे दो, (१३) अपने नौकर के साथ समानता का व्यवहार करो, जो स्वयं खाओ पहनो वही उसे खिलाओ, पहनाओ (१४) नाप कर दो तो पूरा भर कर दो, तौल कर दो तो तराजू से पूरा तौल कर दो, (१५) अमानत में खयानत (बेईमानी) मत करो।" [१६]

वास्तव में ये नैतिकता प्रधान शुभकर्म हैं, परन्तु ईस्लाम धर्म में एक तो पुनर्जन्म को नहीं माना गया, दूसरे, जितना जोर खुदा की इबादत, रसूलों (पैगम्बरों) के प्रति विनम्रता पर दिया गया है, जिसमें नमाज, रोजा, हज और जकात आदि कर्म काण्ड आदि प्रमुख है, उतना जोर इस पर नहीं दिया गया कि अनैतिक कर्मों (आचरणों) से न बचने से यहाँ और परलोक में उसका दुष्फल भोगना पड़ता है। बल्किन 'रोज़े मशहर' में लिखा है कि कयामत (अन्तिम निर्णय के दिन) अपने कर्मों का हिसाब अल्लाह के दरबार में हाजिर हो कर देना होता है,[१७] इस कारण व्यक्ति बेखटके जीववध, मांसाहार, शिकार, मद्यपान, हत्या, आगजनी, दंगा, आतंक, पशुबलि (कुर्बानी), आदि अनैतिक कृत्यों को, पाप कर्मों को करता रहता है। अन्यथा, अल्लाह की इबादत एवं पूजा करने वाला, अल्लाह की आज्ञाओं को ठुकराता है, उनके अनुसार नहीं चलता है, तब कैसे कहा जाए कि वह खुदा का भक्त या पूजक है?

दूसरे धर्म सम्प्रदायों आदि से घृणा, विद्वेष की प्रेरणा : पाप कर्म के बीज

दूसरे, ईस्लाम धर्म में मोमिन औ काफिर का भेद करके घृणा और विद्वेष का बीज पहले से ही बो रखा है जो कि अशुभ कर्मबन्ध का कारण है। शुभाशुभ कर्मों का फल स्वयं कर्मों से ही मिल जाता है, खुदा को इस प्रपंच में डालने की जरूरत ही नहीं, खुदा (परमात्मा) की इबादत (भक्ति) करके उससे पाप माफी का फतबा लेने की बात भी न्यायसंगत नहीं है। जैन कर्म विज्ञान मनुष्य मात्र ही नहीं, प्राणिमात्र के प्रति आत्मौपम्य, मैत्रीभाव आदि रखने की बात करता है। साथ ही नैतिकता से स्वर्ग तक की ही प्राप्ति होती है, मोक्ष नहीं, इसीलिए जैन कर्म विज्ञान का स्पष्ट उद्घोष है कि शुद्धकर्म (धर्म) या अकर्म की स्थिति तक पहुँचो ताकि मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष (कर्म मुक्ति) प्राप्त कर सको, अगर वह न हो सके तो कम से कम नैतिक नियमों का पालन करो, ताकि शुभ कर्म द्वारा सुगति प्राप्त कर सको।[१८]

जैनकर्म विज्ञानः नैतिक संतुष्टिदायक

एक पाश्चात्य विचारक हॉग महोदय ने कर्म के विषय में एक ही प्रश्न उठाया है कि "क्या कर्म नैतिक रूप से सन्तुष्टि देता है?"[१९] इसके उत्तर में जैन कर्म विज्ञान स्पष्ट कहता है कि यदि कोई धर्मनीति की दृष्टि से न्याय-नीति पूर्वक शुभ कर्म (आचरण) करता है, अथवा अहिंसा, सत्य आदि सद्धर्म (शुद्ध कर्म) का आचरण करता है तो वह निष्फल नहीं जाता। उसे देर-सबेर उसका सुफल मिलता ही है।

---

१६. देखें जिनवाणी कर्मसिद्धांत विशेषांक में प्रकाशित 'इस्लाम धर्म में कर्म का स्वरूप' लेख पृ. २१२-२१३

१७. (क) वही, पृ. २०९ (ख) 'रोजे मशहर'

१८. देखें, उत्तराध्ययन सूत्र का चित्तसंभूतीय अध्ययन १३ बी ३२ बी गाथा।

१९. जिनवाणी कर्मसिद्धान्त विशेषांक में प्रकाशित 'मसीही धर्म में कर्म की मान्यता' लेख से उद्धत १२०४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभी धर्मों और सम्प्रदायों में ऐसे महान् व्यक्ति हुए हैं, जो नैतिक एवं धार्मिक आचरण करके उच्चपद पर पहुँचे हैं, विश्ववन्द्य और पूजनीय बने हैं। उनके नैतिक एवं आध्यात्मिक आचरणों के सुफल प्राप्त करने में कोई भी शक्ति या देवी देव बाधक नहीं बने। यह कर्मविज्ञान द्वारा नैतिक सन्तुष्टि नहीं तो क्या है?

कर्मसिद्धान्त का कार्य : नैतिकता के प्रति आस्था जगाना, प्रेरणा देना

डॉ. सागरमल जैन के अनुसार "सामान्य मनुष्य को नैतिकता के प्रति आस्थावान् बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि कर्मों की शुभाशुभ प्रकृति के अनुसार शुभाशुभ फल प्राप्त होने की धारणा में उसका विश्वास बना रहे।" [२०] जैनकर्म विज्ञान जनसाधारण को नैतिकता के प्रति आस्थावान रखने और अनैतिक (पाप) कर्मों से बचाने में सफल सिद्ध हुआ है। जैन धर्म के महान् आचार्य कलिकाल सर्वज्ञ हेमन्चद्रसूरि ने गुजरात के सोलंकी राजा कुमाश्पाल को और उसके आश्रय से अनेक राजाओं, मंत्रियों और जनता को कर्म विज्ञान का रहस्य समझा कर अनैतिक कृत्य करने से बचाया है और नैतिकता धार्मिकता के मार्ग पर चढ़ाया है। आचार्य हीरविजयसूरि तथा उनके शिष्यों ने सम्राट् अकबर को कर्मविज्ञान के माध्यम से प्रतिबोध देकर अनैतिक आचरणों से बचा कर नैतिकता के पथ पर चढ़ाया था। इस युग में जैनाचार्य पूज्य श्री लालजी महाराज, ज्योतिर्धर पूज्य श्री जवाहर लालजी महाराज, जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज आदि अनेक नामी-अनामी आचार्यों एवं प्रभावक मुनिवरों ने अनेक राजाओं, शासकों, ठाकुरों, राजनेताओं, एवं समाजनायकों तथा अपराधियों को जैनकर्म विज्ञान के माध्यम से मांसाहार, मद्यपान, शिकार, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन, जुआ आदि अनैतिक कृत्य छुड़ा कर नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा दी है [२१]। कई महान् सन्तों ने, जैन श्रावकों ने कर्मविज्ञान का सांगोपांग अध्ययन करके, दूसरों को समझा-बूझा कर इसी बात पर जोर दिया है कि भगवान् या परमात्मा की वास्तविक सेवा-पूजा उनकी आज्ञाओं का परिपालन करना है। [२२] एक ओर से अपने आपको परमात्मा (खुदा या गॉड) का भक्त (इबादतगार) कहे परन्तु प्राणिमात्र के प्रति रहम (दया) करने, मांसाहार, मद्यपान, व्यभिचार आदि पापकर्म न करने की उनकी आज्ञाओं को ठुकराता जाए, वह खुदा, परमात्मा या सतश्री अकाल का भक्त (बंदा) नहीं है। जैनकर्म विज्ञान इस तथ्य पर बहुत जोर देता है कि अगर अहिंसादि शुद्ध कर्म (धर्माचरण) न कर सको तो, कम से कम आर्यकर्म (नैतिक आचरण) तो करो! [२३]

अतः यह दावे के साथ कहा जा सकता है, कि जैनकर्म विज्ञानानुसार कर्म सिद्धान्त की नैतिकता के सन्दर्भ में पद-पद पर उपयोगिता है।

यह बात निश्चित है कि सांसारिक मानव सदैव निरन्तर शुद्ध उपयोग में रह कर, ज्ञाता-द्रष्टा बन कर शुद्ध कर्म पर या अरागदृष्टि होकर अकर्म की स्थिति या स्वरूपरमण की स्थिति में नहीं रह सकता, इसलिए जैन कर्म विज्ञान के प्ररूपक तीर्थंकरों ने कहा शुभ-उपयोग में रह कर अनासक्तिपूर्वक कम से कम शुभकर्म करते रहना चाहिए। नौ प्रकार के पुण्य इसी उद्देश्य से बताए हैं। साथ ही उन्होंने अशुभकर्म रूप

---

२०. जैनकर्म सिन्द्धान्तः तुलनात्मक अध्ययन (डॉ. सागरमल जैन)?

२१. देखें पूजश्रीलालजी महाराज का जीवन चरित्र, पूज्यश्री जवाहरलालजी माहत्मा का जीवन चरित्र भाग १ तथा जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज आदि का जीवनचरित्र।

२२. तवसपयस्तिवा ज्ञापरिपालनम्- हेषचन्द्रचार्य

२३. "जइ तेसि भोगे चइउं अहन्तो, अज्ञाइं कम्माइ करेह रायं!-"उत्तराध्ययनसूत्र अ.१३ मा. ३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनैतिक कर्मों = अठारह पाप स्थानकों तथा सप्तकुव्यसनों आदि पापस्त्रोतों से बचने का निर्देश भी किया है।[२४]

जैन कर्मविज्ञान कर्मानुसार फलप्रदान की बात कहता है

कदाचित् विवशता से कोई त्रसजीवहिंसा आदि पापाचरण हो जाए तो जैन कर्म विज्ञान उसकी शुद्धि के लिए आलोचना, निन्दना (पश्चाताप), गर्हणा, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान, शुद्धि के लिए आलोचना, निन्दना (पश्चाताप), गर्हणा, प्रतिक्रमण, कायोत्सा, प्रत्यास्थान, भावना, अनुप्रेक्षा, त्याग, तप क्षमापना प्रायश्चित आदि तप बताता है। इसलिए 'डॉ. ए.एस. थियोडोर' के इस भ्रान्त मन्तव्य का खण्डन हो जाता है कि "कर्म सिद्धान्त के न्यायतावाद में दया, पश्चाताप, क्षमा, पापों का शोधन करने का स्थान नहीं है।"[२५]

जैन कर्म सिद्धान्त कर्म का फल ईश्वर या किसी शक्ति द्वारा प्रदान करने की बात से सर्वथा असहमत है, यही कारण है कि वह नैतिक (शुभ) अनैतिक (अशुभ) कर्मों का फल कर्मानुसार स्वतः प्राप्त होने की बात कहता है। परमात्मा को प्रसन्न करने या उनकी सेवा भक्ति करने मात्र से अनैतिक (पाप) कर्म के फल से कोई बच नहीं सकता। जैनकर्म सिद्धान्त 'दूध का दूध और पानी का पानी' इस प्रकार शुभाशुभ कार्य का न्यायसंगत फल बताता है। कर्मसिद्धान्त के न्याय को लौकिक विधि (कानून) वेत्ता भी कोई चुनौती नहीं दे सकता। इसलिए कर्म चाहे लौकिक (संसारिक) हो या लोकोत्तर, शुभ हो, शुद्ध हो या अशुभ हो, सबको यथायोग्य (न्यायसंगत) फल मिलने का प्रतिपादन जैनकर्मविज्ञान व्यवस्थित ढंग से करता है। इसलिए डॉ. ए.सी. बोरक्वेट के इस मत का भी निराकरण हो जाता है कि सांसारिक न्याय के रूप में कर्मसिद्धान्त अपने आप में निन्दनीय है।"[२६]

---

२४. देखें (क) स्थानांगसूत्र नौंवा स्थान (ख) १८ स्थान के लिए देखें समवायांग १८ वां समवाय

२५. (क) "आलोयणाएणं......इत्थीवेय-नपुंसयवेयं च न ब बंधइ पुव्वबद्धं चणं निज्झरेइ।"

(ख) "निदंणयाएणं...पच्छाणुतावेणं विरज्झमाणे करण-गुणसेढिं पडिवज्जइ, क. पडिवन्नेयणं अणगारे मोहणिज्जंकम्मं उग्घाएइ।"

(ग) "गरहणयाएणं....जीवे अपसत्थेहिंतो जोगेहिंतो नियत्तेइ, पसन्थे य पडिवज्जइ।"

(घ) "पडिक्कमणेणं...वयछिद्दाणि पिहेइ। पसत्थजोग पडिवन्ने य अणगारे अणंतघाइपज्जवे खवेइ॥"

(ड) 'काउसग्गेणं–तीय-पडुपन्नं पायच्छितंविसोहेइ। विसुच्द-पायच्छिते च जीवे निव्वुयहियए–सुहसुहेणं विहरड।

(च) पञ्चक्खाणेणं इच्छानिरोहं जणयह–सव्वदत्वेसु विणीय तत्हेसीइभूए विहरइ।

(छ) पायच्छिन्त-करणेणं पावकझविसोहिं जणयइ, बिरइयोर यावि भव...।

(ज) खमात्रणयाएणं पहलयणभावं जणयइ।—सव्व पाणजी सत्तेसु मित्तीभावमुवगए भावहिसोहिं काऊण निब्भए भवइ।- उत्तराध्ययन सूत्र २९, सू.५, ६, ७, ११, १२, १३, १६, १७

(झ) Religion and Society Vol. No. XIV No. 4/1967

२६.. Christian Faith and Non Christian Religion- By A.C.Bonquet. P.196

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानवती भी कर्म सिद्धान्तानुसार अशुभकर्मक्षय से मिलती है

यद्यपि प्रत्येक धर्म सम्प्रदाय ने आध्यात्मिकता की दिशा में सर्वभूतहित पर ध्यान दिया है, तथापि उसका प्रथम पड़ाव सर्व मानवहित है। सर्वमानवहित मानवता की परिधि में आता है, जो नैतिकता का आवश्यक अंग है। भगवान् महावीर ने नैतिकता के सन्दर्भ में दुर्लभता के चार अंगों में मानवता = मनुष्यत्व को प्रथम दुर्लभ अंग बताया है। साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि विविध कर्मों से कलुषित जीव देव, नरक, तिर्यञ्च और असुरयोनियों तथा मनुष्यगति में भी कभी चाण्डाल, शूद्र वर्णसंकर तथा क्रूर क्षत्रिय होता है, तो कभी कीट, पतंग, चींटी, कुंथु आदि योनियों में कर्मों के वश सम्मूढ़ हो कर अमानुषी योनियों में प्राणी नाना दुःख, संकट और पीड़ा पाता है। कदाचित् पुण्योदय से क्रमशः अशुभकर्मों का क्षय करके जीव तथाविध आत्मशुद्धि प्राप्त करता है और तब मनुष्यता को ग्रहण। स्वीकार करता है। [२७]

देवदुर्लभ मनुष्यत्व : नैतिकता का प्राण और प्रथम अंग

कितनी दुर्लभ और कठिन है, मनुष्यता जो नैतिकता का प्रथम अंग है? भगवान् महावीर ने जैनकर्म सिद्धान्त की दृष्टि से मनुष्यता की दुर्लभता का विश्लेषण किया है। इसी से समझा जा सकता है कि नैतिकता के सन्दर्भ में जैन कर्म सिद्धान्त की कितनी उपयोगिता है?

नैतिकता का प्राण मानवता है। तथा उसके अन्य अवयव हैं -न्याय, नीति, मानवमात्र के साथ भाईचारे का व्यवहार, अपने ग्राम, नगर, राष्ट्र, पड़ौसी और परिवार आदि के साथ सुख-दुःख में सहायक बनना, अपने कर्तव्य का पालन, ले-दे की व्यवहारिक नीति आदि। नैतिकता का पालन न होने पर कैसी कैसी कठिनाइयाँ और विपत्तियाँ आती हैं? कर्म सिद्धान्त की दृष्टि से वर्तमान में इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है।

नैतिकता का उल्लंघन या पालन वर्तमान में ही शुभाशुभ फलदायक

नैतिकता का या नीति नियमों का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को कर्म सिद्धान्त के अनुसार कितनी विपन्नता, उपेक्षा, अवहेलना, कर्तव्य विमुखता, दुःख-दारिद्रय का सामना करने का शिकार होना पड़ता है, इस के ज्वलन्त उदाहरण वर्तमान मानव जीवन में देखे जा सकते हैं।

---

२७. (क) "चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीय जंणुणो, माणुस्तं सुई सच्छा, संजमझिय वीरियं।" १॥

(ख) समावन्नाण संसारे नाणाआगोत्तासु जाइसु कम्मा नाणाविहा कुट्टु पुढ़ो निसं मिया पया॥२॥

श्रएगयादेव लोगेसु नरएसु वि एगमा। एगमो आसुरंकायं अहाकम्मेहिंगचाई॥३॥

एगमाखत्तिओ होई, तओ चांडाल-वुक्कसो। तओ कीड पयंगोम, तओकुंभु पिवीलिया॥४॥

एवभावट्टजोशिसु पाणिणो कम्मकिलिसा, न निविज्जंति संसारे सव्वहेस व खत्तिया॥५॥

कम्मसंगेहि सझूठा दुक्खियाबहुवेमणा। अमाणुसासु जोणीस विणिहम्मंति पाणिण्ते॥६॥

कम्माणन पहाणाए आणुपुव्वी कमाइउ। जीवा सोहिमणुपत्ता आययति मणुस्सयं॥७॥

- उत्तराध्ययन सूत्र ३।३ गा. १ से ७ तक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नैतिकता के पालन में आस्था व्यक्ति को सदाचरी तथा पारस्परिक सहनुभूति प्रदान में अग्रसर बनाती है उससे कर्तव्य निष्ठा का आनन्द प्राप्त होता है। नैतिकता की प्रवृत्तियाँ व्यक्ति के जीवन में सुख और सन्तोष का अमृत भी देती है और समाज के स्तर और गठन को सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित बनाती है।

नैतिकता के आदर्शों के प्रति आस्थाएँ लड़खड़ाने पर व्यक्ति ही नहीं वह जाति भी अनैतिक कर्मों से स्वयंमेव चिन्तित, व्यथित और स्वार्थरायण बन जाती है फलतः सहयोग और उदारता की उन सभी प्रवृत्तियों का अन्त हो जाता है, जिनमें मनुष्य को कुछ त्याग और कष्ट उठाना पड़ता है।

परिवार और समाज में नैतिकता के प्रति अनास्था का दुष्परिणाम

नैतिकता की दृष्टि से सोचा जाए तो परिवार और समाज का ऋण व्यक्ति पर कम नहीं है। माता पिता और बुजुर्गों की सहायता से व्यक्ति का पालन-पोषण होता है, वह स्वावलम्बी बनता है, इस प्रकार व्यक्ति पर पितृ ऋण भी है। नैतिकता का तकाजा है कि पति-पत्नी दोनों में से किसी के प्रति अरुचि हो जाने पर भी उसकी पिछली सद्भावना और सत्कार्य के लिए ऋणी रहने तथा निबाहने को तत्पर रहना चाहिए। सन्तान के प्रति माता-पिता को और सन्तान का माता पिता के प्रति पूर्ण बफादारी और कर्तव्यनिष्ठा रखना आवश्यक है। मनुष्यमात्र में अपने जैसी ही आत्मा समझ कर न्याय, नीति, ईमानदारी, सहानुभूति और सद्भावना रखनी चाहिए। कर्मसिद्धान्त नैतिकता के इन सूत्रों के अनुसार आचरण करने, न करने का सुखद-दुःखद फल प्रायः हाथोहाथ बता देता है।

भौतिकतावादी नैतिकता विरुद्ध अतिस्वार्थी

नैतिकता के इन आदर्शों के विरुद्ध वर्तमान भौतिकता की चकाचौंध में पलने वाले लोग सीधा यों ही कहने लगते हैं -"हमें परिवार से ,समाज से या माता-पिता से क्या मतलब? हम क्यों दूसरों के लिए कष्ट सहें? क्यों अपने आपको विपत्ति में डालें? ईश्वर, धर्म, नीति, परलोक, कर्म, कर्मफल, आदि सब ढोंग है, पूंजीपतियों और उनके एजेंटों की बकवास है। इनको मानने न मानने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। इन्हें मानने से कोई भौतिक या आर्थिक लाभ नहीं है।"

इस अनैतिकता का दूरगामी परिणाम

इस अनैतिकता के प्रभाव की कुछ झांकी इंग्लैण्ड के प्रख्यात पत्र 'स्पेक्टेटर' में कुछ वर्षो पूर्व एक लेख में दी गई थी। उसमें उस देश के वृद्ध व्यक्तियों की दयनीय दशा का विवरण दिया था कि "इस देश के अधिकांश वृद्धजन अपनी असमर्थ स्थिति में सन्तान की रत्तीभर भी सेवा, सहानुभूति नहीं पाते। अतः वे इस प्रकार करुण विलाप करते हैं कि हे भगवान्! किसी तरह मौत आ जाए तो चैन मिले। पर उनकी पुकार कोई भी नहीं सुनता। दुःखित-पीड़ित वृद्धजनों का यह वर्ग द्रुतगति से बढ़ता जा रहा है।"

वृद्धों द्वारा आत्महत्या : उनकी ही अनैतिकता उन्हें ही भारी पड़ी

'कोरोनर' (लन्दन) के 'डॉक्टर मिलन' को पिछले दिनों ७०० दुर्घटनाग्रस्त मृतशवों का विश्लेषण करना पड़ा। उनमें एक तिहाई आत्महत्या के कारण मरे थे। इन आत्महत्या करने वालों में अधिकांश ऐसे बूढ़े लोग थे, जिन्हें बिना किसी सहायता के जीवन यापन भारी पड़ रहा था और उन्होंने इस तरह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घिस-घिस कर मरने की अपेक्षा, नींद की अधिक गोलियाँ खाकर मरना अधिक अच्छा समझा, ...क्योंकि वयस्क होने के बाद सन्तान ने उनकी ओर मुंह मोड़ कर भी नहीं देखा था।"[२८]

बूढ़े अभिभावकों की इस दुर्गति का कारण प्रायः वे स्वयं ही हैं। उन्होंने अपने उन बालकों को अभिशाप समझ कर अपनी जवानी में उनके प्रति उपेक्षा रखी। न तो स्वयं बूढ़ों ने उस समय नैतिकता रखी और न ही अपने बच्चों को नैतिकता के संस्कार दिये। उन्होंने ही नैतिक उच्छृंखलता को जन्म दिया, वही नैतिक उच्छृंखलता उनके बालकों में अवतरित हुई, जो परम्परा से पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में उनके इस अनैतिकायुक्त कर्म को फल दुःख, विपत्ति, एकाकीपन, नीरस असहाय जीवन-यापन, विलाप, आदि के रुप में उन्हें और उनकी सन्तान को देखना पड़ा। जैन कर्म विज्ञान यही तो बताता है। कर्म सिद्धान्त पर अनास्था और अविश्वास लाकर जिन्होंने अपने जीवन में नीति एवं धर्म से युक्त विचार आचार पर ध्यान नहीं दिया और नैतिकता के सन्दर्भ में साधारण मानवीय कर्तव्य की भी उपेक्षा कर दी, उन्हें उन दुष्कर्मों का फल भोगना पड़ा और उनकी संतान को भी बिरासत में वे ही अनैतिकता के कुसंस्कार मिले।[२९]

निष्कर्ष यह है कि शरीर के साथ ही अपने जीवन का अन्त मान कर कर्म विज्ञान के सिद्धान्त को व्यर्थ की बकवास मानने वाले तथा नैतिकता से रहित, अनैतिक आचरणों से युक्त जीवन यापन करने वाले थके, हारे, बूढ़े, घिसे व्यक्तियों की आँखों में आशा की चमक कैसे आ सकती है? ऐसी स्थिति में वे निरर्थकतावादी बन जाएँ तो कोई आश्चर्य नहीं। हिप्पीवाद इसी नीरस निरर्थक जीवन की निरंकुश अभिव्यक्ति है। अभी इसका प्रारम्भ है। कर्म विज्ञान के प्रति अनास्था जितनी प्रखर होगी, उतना ही यह क्रम उग्र होता जाएगा। हो सकता है, इसकी रसता एवं निरर्थकता की आग में झुलस कर भारतीय सम्भता और संस्कृति भी स्वाह हो जाए।[३०] वर्तमान मानव का विश्वास कर्मविज्ञान से सम्बन्धित आत्मा परमात्मा, स्वर्ग-नरकादि परलोक, धर्म, कर्म, कर्मफल, नैतिकता, धार्मिकता आदि पर से उखड़ता जा रहा है। आस्थाकी इन जड़ों के उखड़ने से, शेष सभी अंगोपांग उखड़ जाएँगे, इसका कोई विचार नहीं है।

वर्तमान में व्यक्ति के चिन्तन को 'फ्रायड' और 'मार्क्स' दोनों ने अत्यधिक प्रभावित किया है। फ्रायड ने व्यक्ति की प्रवृत्तियों एवं सामाजिक नैतिकता के बीच संघर्ष एवं द्वन्द्व अभिव्यक्त किया है। उसकी दृष्टि में 'सैक्स' सर्वाधिक प्रमुख हो गया है। इसी एकांगी और निपट स्वार्थी दृष्टिकोण से जीवन को विश्लेषित एवं विवेचित करने का परिणाम 'किन्से रिपोर्ट' के रूप में सामने आया। इस रिपोर्ट ने सैक्स के मामले में वर्तमान मनुष्य की मनःस्थितियों को विश्लेषण किया है। संयम की सीमाएँ टूटने लगीं। भोग का अतिरेक सामान्य व्यवहार का पर्याय बन गया। जिनके जीवन में यह अतिरेक नहीं था, उन्होंने अपने को मनोरोगी मान लिया। सैक्स-कुण्ठाओं के मनोरोगियों की संख्या बढ़ती गई। वासनातृप्ति ही जिंदगी का लक्ष्य हो गया। पाश्चात्य जीवन एवं रजनीशवाद आदि ने इस आग में ईन्धन का काम किया। प्रेम का अर्थ इन्द्रिय-विषय भोगों की निर्बाध, निमर्यादतृति को ही जीवन का सर्वस्व सुख मान लिया। भार्या के लिये धर्म पत्नी शब्द ने भोग पत्नी का रूप ले लिया। नैतिकता को धत्ता बता कर पति-पत्नी प्रायः आदर्शहीनता पर

---

२८. अखण्डज्योति मार्च १९७२ के "अनास्था हमें प्रेतपिशाच बना देगी", लेख के आधार पर पृ.१८

२९. अखण्डज्योति मार्च १९७२ के "अनास्था हमें प्रेतपिशाच बना देगी" लेख से साभार उद्घृत, पृ. १९

३० वही पृष्ठ १९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उतर आते हैं। पाश्चात्य जगत् में बच्चों की भी गणना एक विपत्ति में होने लगी है। माँ-बाप उन्हें अभिशाप मानने लगे हैं। पति-पत्नी मिलन जब नैतिकता को ताक में रखकर विशुद्ध कामुक प्रयोजन के लिये ही रह जाता है, तब कृत्रिम प्रजनन विरोध, भ्रूण हत्या या गर्भपात में कोई दोष नहीं समझा जाता। इस अनैतिक कर्म के फलस्वरूप स्त्री को बीमारियाँ लग जाती हैं, पुरुष भी अतिभोग का शिकार होकर अनैतिक कर्म का दण्ड किसी न किसी बीमारी, विपत्ति या अर्थ हानि के रूप में पाता है।

पाश्चात्य जगत् की तरह भारत में भी यह प्रचलन अधिक होता जा रहा है। बच्चे जब पेट में आते हैं या जन्म लेने लगते हैं, उनके माँ-बाप की कामुकवृत्ति की पूर्ति में बाधक बनते हैं। फलतः पेट में आए हुए बच्चों से पिण्ड छुड़ाने के लिए कृत्रिम प्रजनन-निरोध का सहारा लिया जाता है। जन्में हुए बच्चों से भी कब, किस तरह पिण्ड छुटे, इसकी चिन्ता उनके माता-पिता को होने लगी है। सौन्दर्य को हानि न पहुँचे इसलिए बच्चों को माता का नहीं, बोतल का दूध पीना पड़ता है। कई परिवारों में तो अधिकांश बच्चों के पालन-पोषण की झंझट से बचने के लिए उन्हें पालन गृहों में दे दिया जाता है। पैसा देकर इस जंजाल से मां-बाप छुट्टी पा लेते हैं। फिर स्वच्छन्द घूमने-फिरने और हंसने-खेलने की सुविधा हो जाती है। जैसे ही बालक कमाऊ हुआ पाश्चात्य जगत् में मां-बाप से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। पशुपक्षियों में भी तो यही प्रथा है। उड़ने-चरने लायक न हो तभी तक माता उनकी सहायता करती है। बाप तो उस स्थिति में भी ध्यान नहीं देता। बच्चों की जीवनरक्षा के लिए यदि माता के हृदय में नैतिक दृष्टि से स्वाभाविक ममता न होती तो अनास्थावान माताएँ बच्चों की सार संभाल करने में रुचिन लेतीं और माता की निगाह बदलने पर बाप तो उनकी ओर आँख उठाकर भी न देखता। नैतिकता की जगह पाशविक वृत्ति ले लेती है। [३१]

जिन माता-पिताओं का दृष्टिकोण बच्चों के प्रति पाशविकवृत्ति-युक्त हो जाता है, उस दुष्कर्म का प्रतिफल बुढ़ापे में उन्हें भुगतना पड़ता है। वे बच्चें भी बुढ़ापे में उन दुर्नीत अभिभावकों की कोई सहायता नहीं करते और उन्हें कुत्ते की मौत मरने देते हैं। आखिर वे जब बूढ़े होते हैं तो उन्हें भी अपने बच्चों से सेवा या सहयोग की कोई आशा नहीं रहती। 'याध्क्करणं ताध्क्भरणं' इस कर्मसिद्धान्त के अनुसार उनकी अनैतिकता का फल उन्हें मिलता ही है।

पति-पत्नी के जीवन में प्रायः इस अनैतिकता ने गहरा प्रवेश पा लिया है। वैवाहिक जीवन का उद्देश्य कामुकता की तृप्ति हो गया है। वेश्या जिस प्रकार शरीर सौन्दर्य, प्रसाधन एवं साजसज्जा से लेकर वाक्जाल तक के रस्सों से आगन्तुक कामुक को बांधे रहती है, वैसी ही दुर्नीति औसत पत्नी को प्रायः अपने पति के साथ बरतनी पड़ती है। जब तक कामवासनातृप्ति का प्रयोजन खूबसूरती से चलता है, तब तक वह प्रायः पत्नी को चाहता है, आर्थिक लोभ एवं स्वार्थ का दूसरा पहलू भी विवाह के साथ जुड़ गया है। प्रायः निपटस्वार्थ पूर्ण अनैतिकता की इस शतरंज का पर्याय बन गया है दाम्पत्य जीवन। एक घर में रहते हुए भी पति पत्नी में प्रायः अविश्वास का दौर चलता है। विवाह के पूर्व आजकल के मनचले युवक अपने भावी साथी के साथ जो लम्बे चौड़े वायदे और हावभाव दिखाते हैं, वे सन्तान होने के बाद प्रायः फीके हो जाते हैं।[३२] इस प्रकार दाम्पत्य जीवन की इस अनैतिकतापूर्ण विडम्बना का जब फटस्फोट होता है, तब निराशा, दुःख और संकट ही हाथ लगता है।

---

३१. जिनवाणी कर्मसिद्धान्त विशेषांक में प्रकाशित 'कर्म का सामाजिक सन्दर्भ' लेख से भावांश पृष्ठ. २८

३२. अखण्ड ज्योति मार्च १९७२ में प्रकाशित अनास्था हमें प्रेत-पिशाच बना देगी लेख पृष्ठ १९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्या पारिवारिक, क्या सामाजिक और क्या राष्ट्रीय जीवन में परस्पर अविश्वास, निपटस्वार्थान्धता, आत्मीयता का अभाव, नीति और धर्म से भ्रष्ट होने से वर्तमान युग का मानव प्रायः अपने आपको एकाकी, असहाय और दीन-हीन अनुभव करता है। छल और दिखावे का, बाहरी तड़क-भड़क का ताना-बाना बुनते रहने से मन कितना भारी, चिन्तित, व्यथित, क्षुब्ध और उखड़ा-उखड़ा रहता है, यह देखा जा सकता है। सारा परिवार अनैतिकता के कारण आन्तरिक उद्वेगों की आग में मरघट की चिता बन कर जलता रहता, आन्तरिक निराशा हर घड़ी खाती रहती है। नशा पी कर गम गलत करते रहते हैं।

नैतिकता की जगह भौतिकता ने ले ली है। स्वार्थ त्याग का स्थान स्वार्थ साधन ने ले लिया है। मांसाहार और मद्यपान के पक्ष में यह कुतर्क प्रस्तुत किया जाता है कि अपने स्वादिष्ट भोजन और पेय की अपनी क्षणिक लो लुपता वश पशु-पक्षियों को तथा अपने परिवार को भयंकर कष्ट सहना पड़ता है, उसकी हम क्यों चिन्ता करें? जब मनुष्य इस प्रकार का अनैतिक और स्वार्थ प्रधान बन जाता है तो उसका प्रतिफल भी कर्म के अनुसार देर सबेर मिलता है। वह दूसरों की सुविधा-असुविधा की, न्याय-अन्याय की, या सुख-दुःख की परवाह नहीं करता। नैतिकता और धर्म कर्म के प्रति अनास्था के कारण पारिवारिकता, कौटुम्बिकता और सामाजिकाता का ढाँचा लड़खड़ाने लगा है। जब नीति नियम नहीं, धर्म नहीं, आत्मा-परमात्मा नहीं, कर्म नहीं, कर्मफल नहीं, परलोक नहीं, तो फिर कर्तव्य पालन नहीं, स्वार्थ त्याग नहीं, नैतिकता के आदर्शों के पालन के लिए थोड़ी सी असुविधा उठाने की आवश्कता नहीं! इस 'नहीं' की नास्तिकता ने व्यक्ति को संकीर्णता, पशुता और अनुदारता को बढ़ावा दिया है। नैतिकता का या ले-दे के व्यवहार का भी लोप होता जा रहा है। इस प्रबल अनास्था के फलस्वरूप उच्छृंखल आचरण, स्वच्छन्द निपटस्वार्थी एवं सिद्धान्तहीन जीवन तथा अपराधी प्रवृत्तियों की आँधी तूफान की तरह बढ़ता देखा जा सकता है। ऐसा परिवार, समाज और राष्ट्र नरकागार नहीं बनेगा तो और क्या होगा? [३३]

कर्म सिद्धान्त के अनुसार ऐसा अनैतिकता युक्त परिवार, समाज और राष्ट्र कैसा होगा? किस के लिए और कितना सुविधा जनक होगा? इसकी कुछ झांकी जहां तहाँ देखी जा सकती है। वर्तमान युग का मानव अशान्त क्यों है? इस पर विश्लेषण करते हुए डॉ. महावीरसरन जैन अपने लेख में लिखते हैं -[३४]"धार्मिक चेतना एवं नैतिकता बोध से व्यक्ति से मानवीय भावना का विकास होता है। उसका जीवन सार्थक होता है।....आज व्यक्ति का धर्मगत (नैतिक) आचरण पर से विश्वास उठ गया है। पहले के व्यक्ति की, आस्था जीवन की निरन्तरता और समग्रता पर थी। वर्तमान जीवन के आचरण द्वारा अपने भविष्य (इहलौकिक और पारलौकिक जीवन) का स्वरूप निर्धारित होता है। इसलिए वह वर्तमान जीवन को साधन तथा भविष्य को साध्य मानकर चलता था।

"आज के व्यक्ति की दृष्टि' 'वर्तमान' को (तथा 'स्व' को) ही सुखी बनाने पर है। वह अपने वर्तमान को अधिकाधिक सुखी बनाना चाहता है। अपनी सारी इच्छाओं को इसी जीवन में तृप्त कर लेना चाहता है। आज का मानव संशय और दुविधा के चौराहे पर खड़ा है। वह सुख की तलाश में भटक रहा है। धन (येन-केन प्रकारेण) बटोर रहा है। भौतिक उपकरण जोड़ रहा है। वह अपना मकान बनाता है। आलीशान ईमारत बनाने के स्वप्न को मूर्तिमान करता है। मकान सजाता है। सोफासेट, वातानुकूलित व्यवस्था, (फ्रीज, रेडियो, टी.वी.) महंगे पर्दे, प्रकाशध्वनि के आधुनिकतम उपकरण एवं उनके द्वारा रचित मोहक प्रभाव, यह सब उसको अच्छा लगता है।"

---

३३. अखण्ड ज्योति मार्च १९७२ पृ. १८-१९ का भावांश।

३४. जिनवाणी कर्मसिद्धान्त विशेषांक कर्म का सामाजिक सकर्म लेख से पृष्ठ २८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"जिन लोगों को जिंदगी जीने के न्यूनतम साधन उपलब्ध नहीं हो पाते, वे संघर्ष करते हैं। आज वे अभाव का कारण, अपने विगत (इस जन्म में या पूर्वजन्म में पूर्वकृत) कर्मों को न मान कर (न ही अपने जीवन में नीति और धर्म का आचरण करके अशुभ कर्मों को काट कर, शुभकर्मों में संक्रमित करके) सामाजिक व्यवस्था को मानते हैं। (स्वयं अपने जीवन का सुधार न करके, अपने जीवन में नैतिकता और धार्मिकता का पालन एवं पुरुषार्थ न करके) तथा समय और सादगी का जीवन न अपना कर समाज से अपेक्षा रखते हैं कि वह उन्हें जिंदगी जीने की स्थितियाँ मुहैया करावे। यदि ऐसा नहीं हो पाता तो हाथ पर हाथ धर कर बैठने के लिए तैयार नहीं हैं। वे सारी सामाजिक व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट कर देने के लिए बेताब हैं।" [३५]

उपर्युक्त मन्तव्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि कर्म सिद्धान्त पूर्वकृत कर्मों को काटने के लिए तथा अशुभ कर्मों का निरोध करने या शुभ में परिणत करने के लिए जिस नैतिकता एवं धर्मिकता (अहिंसा, संयम, तप आदि) के आचरण की बात करता है, वह जिन्हें पसंद नहीं, वे लोग केवल हिंसा, संघर्ष, तोड़फोड़, अनैतिकता एवं दुर्व्यसनों आदि का रास्ता अपनाते हैं, उसका फल तो अशान्ति, हाय हाय, बेचैनी और नारकीय जीवन तथा दुःखदअन्त के सिवाय और क्या हो सकता है?

इससे यह समझा जा सकता है कि कर्म सिद्धान्त परिवार, समाज या राष्ट्र आदि में नैतिकता का संवर्धन करने और अनैतिकता से व्यक्ति को दूर रखने, में कितना सहायक हो सकता है?

अतः कर्म सिद्धान्त के इन निष्कर्षों को देखते हुए डॉ. जोन मेकेंजी का यह आक्षेप भी निरस्त हो जाता है कि "कर्म सिद्धान्त में ऐसे अनेक कर्मों को भी शुभाशुभ फल देने वाला मान लिया गया है, जिन्हें सामान्य नैतिकदृष्टि से अच्छा या बुरा नहीं कहा जाता।" [३६] इस आक्षेप का एक कारण यह भी सम्भव है कि डॉ. मेकेंजी पौर्वात्यि और पाश्चात्य आचारदर्शन के अन्तर को स्पष्ट नहीं समझ पाए। भारतीय आचारदर्शन कर्मसिद्धान्त पर आधारित है, वह अच्छे-बुरे नैतिक अनैतिक आचरण का भेद स्पष्ट करके उनका इहलौकिक पारलौकिक अच्छा या बुरा कर्मफल भी बताता है, साथ ही, वह अनेक प्रकार की धार्मिक क्रियाओं, उपवास, ध्यान, समतायोग साधना आदि को, तथा सप्तकुव्यसन त्याग को एवं मानवता ही नहीं, प्राणिमात्र के प्रति करुना, दया, आत्मीयता आदि को नैतिक आध्यात्मिक दृष्टि से विहित व अनिवार्य मान कर इसके विपरीत अनैतिकता तथा क्रूरता, निर्दयता, अमानवता आदि को निषिद्ध मानता है। उसका भी शुभाशुभ कर्म फल बताता है, जबकि पाश्चात्य आचार दर्शन नैतिकता को सिर्फ मानव समाज के पारस्परिक व्यवहार तक ही सीमित करता है। वह न तो सप्तकुव्यसन त्याग आदि नैतिक नियमों को मानता है, नहीं मानवेतर प्राणियों के प्रति आत्मीयता को मानता है। यही कारण है पाश्चात्य जीवन में अनैतिकता और आध्यात्मिक विकास के प्रति उपेक्षा का!

यही है नैतिकता के सन्दर्भ में कर्म सिद्धान्त की उपयोगिता के विविध पहलुओं का दिग्दर्शन!

* * * * *

---

३५. बही, पृ. २८९

३६.. हिन्दु एथिक्स पृ. २१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org